श्रीगणेशायनमः ॥

# परमार्थसार ॥

श्लो०—परंपरस्याःप्रकृतेरनादिमेकान्निविष्टंबहुधागुहासु ।
सर्वालयंसर्वचराचरस्थंत्वामेवविष्णुंशरणंप्रपद्ये ॥ १ ॥

श्रीरस्तु पराप्रकृति जोमाया तेहितेपरे औएक सजातीय विजातीय स्वगत भेदरहित औ अनादि औ गुहाजो देव मनुष्यादि देह तिन विषे बहुधा कहे न्यूनाधिक भावकरिके स्थितहै टिकाहै सर्वालयकहै सबका स्थान है औ सब चराचर विषे स्थितहै ऐसेजो तुम विष्णु हौ तिनके मै शरण को प्राप्तहौ ॥ १ ॥

आत्मानुरागोनिखिलोपिलोकोकामाख्णोपिनाचानतिनेचतेच ।
आश्चर्य्यमेतन्मृगतृष्णिकाभेऽन्यांसुखाशोरमतेस्वरूपैव ॥ २ ॥

समुद्र तुल्य आत्मा विषे सब लोक टिका है नतौ स्वादुलेइ न देखै आश्चर्य्य कौबातहै झूठे संसारमे वृथा रमि रहाहै ॥ २ ॥

गर्भवासजन्मजरामरणविप्रयोगदुःखाब्धौ ।
जगदालोक्यनिमग्नंप्राहगुरुंप्रांजलिःशिष्यः ॥ ३ ॥

गर्भवास जन्म बुढापा मरना बिछुरना ए दुख समुद्रविषे बूडा जगतको देखिके शिष्य हाथ जोरिकै गुरु से बोलो ॥ ३ ॥

त्वंसांगवेदवेत्ताभेत्तासंशयगणस्यसत्यवक्ता ।
संसारार्णवतरणोपायंपृच्छाम्यहंभगवन् ॥ ४ ॥

हे गुरो तुम सांगवेद को जानतेहो औसंदेहको दूरि करने वाले हौसत्य बोलतेहौ मोसंसार समुद्रमे छूटनेका उपाय पूछता हौंसो कहिये ॥ ४ ॥

दीर्घेऽस्मिन्संसारेसंसरतःकस्यकेनसंबंधः ।
कर्मशुभाशुभपाशान्यनुभवतिगतागतैरिहकः ॥ ५ ॥

वड़ाभारी संसार तिसमें जन्म मरण को पायके जो घूमिरहेहैं तिनमें के हिके साथ केहिका संबंधहै औ कर्म के पुण्य पाप फलको इह संसार मे चलि फिरिके कौन भोगकर्ता है ॥ ५ ॥

कर्मगुणजालबद्धोजीवस्संसरतिकोशकारइव ।
मोहांधकारगहनात्तस्यकथंबंधनान्मोक्षः ॥ ६ ॥

कर्म रूप सुतरीके जालमें जीवबंधा हैसो संसार मेंसुखदुःख भोगकरता है जैसे कुसहरी का कीड़ा मकान बनायके बंधिजाता हैसोमोह अंधकार रूप बंधनसे कैसे छूटे सो कहो । ६ ॥

गुणकर्मविभागज्ञोधर्माधर्मैर्निबंधकोभवतः ।
इतिगदितंपूर्ववाक्यैःप्रकृतिंपुरुषंचमेब्रूहि ॥ ७ ॥

जोकोई गुणकर्म केविभाग को जानताहै तेहिका धर्म अधर्म बंधन नहीं करते हैं यह बात महात्मा लोग कहिगये हैं सो मायाव जीव का विभाग कहो ॥ ७ ॥

चिंताधारी भगवान्दृष्टःशिष्येणतंसहोवाच ।
विदुषामप्यतिगहनंवक्तव्यमिदंशृणुतथापित्वं ॥ ८ ॥

ऐसा शिष्यका वचन सुनिके भगवान् शेषजी शिष्य सेबोले हेशिष्ययह बात विद्वानों के जानने योग्य नहीहै तथापि तुम सुनो मैंकहताहूं ॥ ८ ॥

सत्यमिवजगदसत्यंमूलप्रकृतेरिदंकृतंयेन ।
तंप्रणिपत्योपेन्द्रंवक्ष्येपरमार्थसारमिदम् ॥ ९ ॥

माया का किया हुवा यह असत्य संसार कोजिसने सत्य कर दिया ऐसे उपेन्द्र अर्थात् विष्णु को प्रणाम करके यह मुख्य सारांश वर्णन करता हूं ॥

अव्यक्ता दण्डम भूदण्डाद्ब्रह्मा ततःप्रजासर्गः ।
मायामयीप्रकृतिःसंचीयतेद्वयंपुनःक्रमशः ॥ १० ॥

मायासे अण्ड उत्पन्न भयाअण्डमेंब्रह्म उत्पन्न भये तिनसे प्रजाउत्पन्न होते भये फिरि मायायह सीजहोजाती है यही क्रमसदा चलाजाता है ॥ १० ॥

मायामयोप्यचेतोगुण कारणगणःकरोतिकर्माणि ।
तदधिष्ठातादेहीसचेतनोनकरोतिकिंचिदपि ॥ ११ ॥

मायारचित गुणजो सत्वादिक तिन करिके युक्तजो इंद्रिया हैते हैं अचेत नपैकर्म करती हैं औइंद्रियो का मालिक जीव सो चेतन्य भी है कुछ नहीं करता है ॥ ११ ॥

यद्दचेतनमपिसन्निकटस्थेमामकेभ्रमतिलोहं ।
तद्दत्करणसमूहस्चेष्टतेचिदधिष्ठितेदेहे ॥ १२ ॥

ऐसे लोहा जड है जबचुवक पत्थर लोहा के समीप जाता हैतव लोहा चलता है इसी तरह से चैतन्य युक्त देह विपे इंद्रिया सब काम करती है ॥ १२ ॥

यद्दत्सवितर्युदितेकरोतिकर्माणिजीवलोकोयं ।
नचतानिकरोतिरविर्नकारयतितद्ददात्मापि ॥ १३ ॥

ऐमे सूर्य के उदय विपे सब जीव काम करते हैं सूर्य कुछ काम नहीं करते न करवाते हैं ऐसे ही अत्मा कुछ नहीं करता इन्द्रिया काम करि रही है ॥ १३॥

मनसोहंकारविमूर्छितस्यचैतन्यविबोधितस्येह ।
पुरुषाभिमानसुखदुःखभावनाभवतिमूढस्य ॥ १४ ॥

अहङ्कार करि मूर्छित चैत्यन्य करि जगाया गया आज्ञानी मन को पुरपाभिमान रूप सुख दुःख भावना होती है ॥ १४ ॥

कर्ताभोक्ताद्रष्टास्मिकर्मणांसुत्तमादीनां ।
इतितरस्वभावविमलोऽभिमन्यतेसर्वगोप्यात्मा ॥ १५ ॥

स्वभावे ते निर्म्मल औ सब के विपे वर्त्त मान ऐसाजो आत्मा पुण्य पाय रूपजो कर्म तिनका कर्ता वि भोक्ता व देखैया मैहो यह अपना को मानता है ॥ १५ ॥

नानाविधवस्तूनांवर्णान्धत्तेयथाऽमलः ।
स्फटिकःतद्दद्उपाधेर्गुणभावितस्वभावंविभुर्धत्ते ॥ १६ ॥

ऐसे सब काल मोस्फटिक पत्थर सुपेदे है औ नाना प्रकार के नील पीतादि रंगको धारण कर्ता है तैसे ही शुद्ध आत्मा गुण युक्त जो उपाधि देह है तिनके भावको धारण करि लेता है ॥ १६ ॥

गच्छतिगच्छतिसलिलेदिनकरबिंबस्थितेस्थितियाति ।
अंतःकरणेगच्छतिगच्छत्यात्मापितद्वदिह ॥ १७ ॥

जैसे जलके चलते हुये सूर्य का बिंब चलताहै जलके स्थित होते स्थिति को प्राप्त होता है तैसेही आत्मा जोजीव सो मनके चलते हुये चलताहै मनके स्थिर भये स्थित होही जाता है ॥ १७ ॥

राहुरदृश्योपियथाशशिबिंबस्थःप्रकाशतेजगति ।
सर्वगतोपितथात्माबुद्धिस्थोपिदृश्यतामेति ॥ १८ ॥

ऐसे राहु नहीं देखि परता है पै चन्द्रमा के बिंबमेजाय केजगत मेदेखि परता है तैसेही आत्मा सर्व गत है बुद्धि बिषे स्थित होता है तब देखि परता है ॥ १८ ॥

सर्वगतंतन्निरुपमद्वैतंतच्चेतसागम्यं ।
यद्बुद्धिगतंब्रह्मोपलभ्यतेशिष्यवेद्यंतत् ॥ १९ ॥

सो सर्व्व गत आत्मा चित्त करिके जाना जाता है कैसा जिसका दूसरा नहीं औ उपमा नहीं है जो बुद्धि से गत आत्मा सोई ब्रह्म जानो हे शिष्य ॥ १९ ॥

आदर्शेमलरहितेयद्वद्रूपंविचिन्त्यतेलोकः ।
आलोकयतितथात्माविशुद्धबुद्धौस्वमात्मानम् ॥ २० ॥

ऐसे निर्मल सीसा बिषे सब लोग अपना रूप देखते हैं इसी तरह यह आत्मा जीव विशुद्ध बुद्धि बिषे अपने शुद्ध रूपको देखता है ॥ २० ॥

बुद्धिमनोऽहंकारास्तन्मात्रेंद्रियगणाःसभूतगणाः ।
संसारसर्गपरिरक्षणक्षयःप्राज्ञताश्रेयाः ॥ २१ ॥

बुद्धि मन अहंकार शब्दादिक विषय इन्द्रिया पंच महा भूत संसार की उत्पत्ति रक्षा प्रलय एसब माया रचित हैं इसी से त्याज्य हैं ॥ २१ ॥

धर्माऽधर्मौसुखदुःखकल्पनास्वर्गनरकवासश्च ।
उत्पत्तिनिधनवर्णाश्रमाःनसंतीहपरमार्थे ॥ २२ ॥

परमात्मा के विषे धर्म अधर्म सुख दुख स्वर्ग नरक वास उत्पत्ति नाश वर्णाश्रमयेकोई नहीं हैं ॥ २२ ॥

स्रगतृष्णायामुदकंशुक्तौरजतंभुजगोरज्ज्वां ।
तैमिरिकचन्द्रयुगंवद्भ्रांतमखिलंजगद्रूपं ॥ २२ ॥

यह जगत् सब एक समै रूपहै जैसे मृगतृष्णामें जल जैसे सूतीके विषे चांदी रज्जुविषे सर्प तिमिरीके जैसे दो चन्द्रमा येसब मिथ्या हैं ऐसे आत्मा विषे जगत् भ्रांतिमात्रे है ॥ २२ ॥

यद्वद्दिनकारएकोविभातिसलिलाशयेषुसर्वेषु ।
तद्वत्सकलोपाधिष्ववस्थितोभातिपरमात्मा ॥ २३ ॥

ऐसे एक सूर्य जितने जलपात्र है तिनविषे सबमे प्रतिबिंब होताहै तैसे परमात्मा जेतनोदेह है तिन सब विषे स्थित है ॥ २३ ॥

खमिवघटादिष्वंतर्बहिःस्थितंब्रह्मसर्वपिंडेषु ।
देहोहमित्यात्मनिवुद्धिःसंसारबंधाय ॥ २४ ॥

ऐसे घटादिकों विषे व घटादिकों के बाहिर आकाश सबमेहै ऐसेही सब देह न विषे ब्रह्म व्याप्त है आत्मा के विषे मैं देहहो यह बुद्धि बंधन को करती है ॥ २४ ॥

सर्वविकल्पहीनःशुद्धोवुद्धोऽजरोऽमरःशान्तः ।
अमलोऽसकृद्विभातश्चेतनआत्माखवद्व्यापी ॥ २५ ॥

जिसमे कोई कल्पना नहीं है शुद्धहै ज्ञानरूप है अजर अमर है शांत है मलरहित है सदा प्रकाशित है ऐसा चैतन्य आत्मा आकाशकी नाई सब में व्याप्त है ॥ २५ ॥

रसफाणितशर्करिकागुड़खंडाविकृतयोयथैवेक्षोः ।
तद्वद्वस्थाभेदाःपरमात्मन्येवबहुरूपाः ॥ २६ ॥

जैसे ऊखमे रस व राब व शक्कर गुड मिश्री ए अनेक विकृतिहैं ऐसेही परमात्माविषे बहुत अवस्था भेद है ॥ २६ ॥

विज्ञानांतर्यामीप्राणविराटदेहजातिपिण्डांताः ।
व्यवहारास्तस्यात्मनएतेऽवस्थाविशेषाःस्युः ॥ २७ ॥

ज्ञान, अन्तर्यामी, प्राण, विराट, देह, जाति, पिण्ड, ए व्यवहार सब आत्माकी अवस्था होतीहैं ॥ २७ ॥

रज्ज्वान्नास्तिभुजंगःसर्पभयंभवतिहेतुनाकेन ।
तद्वद्द्वैतविकल्पभ्रांतिरविद्यानसत्येयम् ॥ २८ ॥

रज्जुमेसर्प है नहीं सर्प से भयकौन कारण से होतीहै इसीतरह द्वैत विकल्प भ्रमरूविद्या है द्वैत सत्य नहीं है ॥ २८ ॥

एतदंधकारंयदनात्मन्यात्मभावनाभ्रांत्या ।
नविंदंतिवासुदेवंसर्वात्मानंनरामूढाः ॥ २९ ॥

भ्रमतेजो देहविषे आत्म मानते हैं यह अंधकार है मूढ अज्ञानी मनुष्य इसीसे सर्वात्मा वासुदेवको नहीं पावते हैं ॥ २९ ॥

प्राणाद्यनंतभेदैरात्मानंसंवितत्यैन्द्रजालमिव ।
संहरतिवासुदेवःस्वविभूत्याक्रीडमानइव ॥ ३० ॥

जैसा इन्द्रजाली बहुततरह से इन्द्रजालकी माया देखावताहै तैसे भगवान् प्राण आदि अनेक भेद करिके आत्मा को फैलाइ देताहै फिरि अपनी माया करिके संहार करिलेता है जैसे बालक खेलते हैं सबचीज फैलाय के फिरि समेटि धरते हैं ॥ ३० ॥

त्रिभिरेवविश्वतैजसप्राज्ञैस्तैरादिमध्यनिधनाख्यैः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तैर्भ्रमभूतैराच्छादितंतुरीयम् ॥३१ ॥

तुरीयजो सब अवस्था में एक रूप रहता है भगवान् सोई विश्व तैजस प्राज्ञओ आदि मध्य अन्त जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ए भ्रमभूतजो अवस्था हैं तिन करिके मूंदा है ॥ ३१ ॥

मोहयतीवात्मानंस्वमाययाद्वैतरूपयादेवः ।
उपलब्धतेस्वयमेवगुहागतंपुरुषमात्मानम् ॥ ३२ ॥

ईश्वर द्वैत रूपजो अपनी मायाहै तेहि करिके अपना को ऐसा मोहित करिदेताहै सबकोउ भयगुहा विषे प्राप्त आत्माको अपनेमे प्राप्त होइ जाता इसीप्रकार ईश्वर अपनेही आधीन है किसीके वशनही है ॥ ३२ ॥

ज्वलनाद्धूमोद्गतिरिहविविधाकृतिरंवरेयथा ।
तद्वद्विष्णोस्सृष्टिःस्वमाययाद्वैतविस्तराभवति ॥ ३३ ॥

जैसे अग्निसे धुवा उत्पन्न भया आकाशविषे जायके नानारूप होइजाता तैसेही विष्णु से उत्पन्न सृष्टि माया करिके द्वैतसे बडे बिस्तार युक्त होइजातीहै ॥ ३३ ॥

शांतश्चमनसिशांतेहृष्टेहृष्टश्चमूढश्चमूढे ।
व्यवहारस्थःसपुनःपरमार्थतईश्वरोभवति ॥ ३४ ॥

ईश्वरपरमार्थमे स्थित होयके ईश्वरहै व्यवहार में स्थित होइके व्यवहार ऐसा भासित होताहे सोई वर्णन करताहूं जबमन शांतहोता है तबशांत सा मालूम होताहे जबमन प्रसन्न होता है तब प्रसन्न मालूम होता हैजब मन मूढ होता है तबमूढ मालूम होताहै फिर ईश्वर का ईश्वर ॥ ३४ ॥

जलधरधूमरजोभिर्नमलिनीक्रियतेयथागगनतलम् ।
तद्वत्प्रकृतिविकारैरपरामृष्टःपरःपुरुषः ॥ ३५ ॥

जैसे मेघ व धुवां व धूरिइन करिके आकाशयुक्त भी मलिन नहीहोतायोंही परम पुरुष ईश्वर मायाके गुणन करिके लिप्त नही होताहे ॥ ३५ ॥

एकस्मिन्नपिचघटेधूमादिमलाद्दतेर्नघटाःशेषाः ।
नभवन्तिमलोपेतायद्वज्जीवोतद्वदिह ॥ ३६ ॥

जैसे एकघडा धूमके मैलसे मैलाभया तब सबघट मैल नहींहोते योंहीं जीव एक देहमे दुःखादि युक्त होताहै सबते दुःखी नहीहोता ॥ ३६ ॥

देहेन्द्रियेषुनियताःकर्मगुणकुर्वतेस्वभोगार्थम् ।
नाहंकर्तानममेतिजानतःकर्मनैवबध्नाति ॥ ३७ ॥

गुण सत्वादिक देह इन्द्रिया मे सदा बसतेहैं जीवके भोगार्थ कर्मकरते हैं मे नही करता हूं मेरे कर्म नही हैं यह जानने वालेको कर्म नही बाधि सकतेहै ॥ ३७ ॥

अन्यशरीरेणकृतंकर्मभवेद्येनदेहउत्पन्नः ।
तदवश्यंभोक्तव्यंभोगादेवक्षयोस्यनिर्दिष्टः ॥ ३८ ॥

पूर्वजन्मके शरीर करिके कर्म कियेगये जिनकर्मोंमे देहउत्पन्नभई तीन कर्म अवश्य भोगकिया चाहिय वे कर्म भोगनेसे नाशहोते हे ॥ ३८ ॥

प्रागज्ञानोपचितंयत्कर्मज्ञानशिखिशिखारूढं ॥
बीजमिवदहनदग्धंजन्मसमर्थंनतद्भवति ॥ ३९ ॥

पहिले बिना जाने जो कर्म किया फिर ज्ञान उत्पन्न भया तो ज्ञानरूप अग्निमे जलिजाते फिरि जन्मनही दे सक्ते हैं जैसे अग्निमे जलाबीज नहीं जमता है ॥ ३९ ॥

ज्ञानोत्पत्तेरूर्ध्वंक्रियमाणंकर्मयत्तदपिनाम ।
नश्लिष्यतिकर्तारंपुष्करपर्णंयथावारि ॥ ४० ॥

ज्ञानोत्पत्तिके उपरांत ज्ञानी जो कुछकर्म कर्ताहै तिहिकरिके लिप्त नहीं होता जैसे जल कमलके पत्ते मे नही लपटता है ॥ ४० ॥

वाग्देहमानसैरिहकर्मचयःक्रियतइतिविबुधाःप्राहुः ।
एकोपिनाहमेषांकर्तातत्कर्मणामस्मि ॥ ४१ ॥

पण्डित कहतेहैं वाणीमन देह ये कर्मकरते हैं ज्ञानी मानता है मै एक इन कर्मोंको नहीकर्ताहूं ॥ ४१ ॥

कर्मफलवीजनाशाज्जन्मविनाशोनचात्रसन्देहः ।
बुध्वैवमपागततमःसवितेवविभातिभारूपः ॥ ४२ ॥

जब कर्मफलके बीजोंको नाशभया तब जन्मको नाशकहै जन्म नहीं होता है यहबात संदेह रहित है जो यह जानताहै सो सदा तेजरूप सूर्य की भांति प्रकाशित रहताहै ॥ ४२ ॥

यद्वदिषीकातूलंपवनोद्धृतंदशदिशोयाति ।
ब्रह्मणितद्वज्ज्ञातेतदेवकर्माणितत्वविदः ॥ ४३ ॥

जैसे मूजको धुवां पवनके वेगमे दशोदिशाको प्राप्त होजाता है ऐसेही ब्रह्मज्ञान पैदाभये तत्ववेत्ताके कर्म उडिजातेहैं ॥ ४३ ॥

क्षीरादुद्धृतमाज्यंक्षिप्तंयद्वन्नपूर्ववत्तस्मिन् ।
प्रकृति गुणेभ्यस्तद्वत्पृथक्कृतस्तत्रचेन्नात्मा ॥ ४४ ॥

दूधमे घृतकाढिलिया फिरि दूधमे छोडनेमे नहीं दूधमें मिलताहै तैसेही चैतन्य मायाके गुणोंमे जब अलगभया फिरि जीवत्वको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

गुणमयमायागहनंनिर्दूययथातमःसहस्रांशुः ।
वाह्याभ्यंतरचारीसैन्धवघनवद्भवेत्पुरुषः ॥ ४५ ॥

जैसे सूर्य अंधकार को दूरि करिके सवतै प्रकाश करते है तैसेही पुरुष माया के गुणके वनको दूरि करिके वाहेर भीतर विचरता है जैसे सिंधुका पहाड़ निर्मल होता है तैसे निर्मल रहिता है ऐसा होइ जाता है ॥ ४५ ॥

यद्वद्देहावयवा स्वदेवतस्याविकारजातानि ।
तद्वत्स्थावरजंगममद्वैतंद्वैतवद्भाति ॥ ४६ ॥

जैसे माटी से देह अंगमय घटादिको है सोपृथक् मालूम होते है तैसेही स्थावर जंगम हैं अद्वैत द्वैत सो भासित होता है ॥ ४६ ॥

एकस्मात् चेतन्याद्‌ब्रह्मनः चेतना जातयो जाताः ।
लोहग्निगणादिवदहनात्यसंततो विस्फुलिंगगणाः ॥ ४७ ॥

एक ईश्वर चेतन्य से बहुत चेतन्य की जाती जीव रूप उत्पन्न होती हैं जैसे लोहगल रते जोअग्नि है तिनसे बहुत चिनगारी निकलती हैं ॥ ४७ ॥

तेगुणसंगमदोषावद्धात्वधान्यजातयःस्वतुषैः ।
जन्मलभंते तावद्यावन्नज्ञानअग्निनादग्धाः ॥ ४८ ॥

तेचैतन्य जाती गुण के साथ दोष होने से वधे हैं तबलगे जन्म मरणको प्राप्त होते हैं जब तक ज्ञान अग्नि करिके नहीं जरते जैसे चाउर जयादिक तूषो से वंधे हैं तब तक जमते है तूषो अलग भय नहो जमते ॥ ४८ ॥

चिद्गुणाचैतन्यात्मनि सर्वगते ऽवस्थिताखिलाधारे ।
कुरुतेसृष्टिमविद्या सर्वं च स्पृशते नया नात्मा ॥ ४९ ॥

सबमें स्थित सबको आधार भूत आत्मा जो चैतन्य रूपतामें स्थित चिद्गुणात्मिका अविद्या रूपा माया सृष्टिको करती हे परन्तु आत्मा को स्पर्श नही करसक्ती हैं । ४९ ॥

रज्वांभुजंगहेतो प्रभवविनाशौ यथा नस्तः ।
जगदुत्पत्तिविनाशौ न तत्कारणेस्तस्तद्वदिह ॥ ५० ॥

जिस उत्पत्ति विनाशको कारण सर्प है वह उत्पत्ति विनाश रज्जुमे नहीं होता है ऐसेही जगत को उत्पति विनाश जगत्कारण ईश्वर विषे नहीं होते हैं ॥ ५० ॥

जन्मविनाशनगमनागमनमलैःसंगवर्जितो नित्यं ।
आकाशद्‌वघटादिषु सर्वात्मा सर्वतो ऽपेतः ॥ ५१ ॥

सबसे अलग सबका आत्मा जन्म विनाश गमन आगम रूप मलोकरिके नित्यही रहितहै जैसे घटादि वस्तु विषे आकाश सबमे सबसे अलगहै ॥ ५१ ॥

कर्मशुभाशुभजनितैःसुखदुःखैर्योगोभवत्युपाधीनां ।
तत्संसर्गादिहस्फटिकसंगादतस्करवत् ॥ ५२ ॥

पुण्य पाप कर्मो से उत्पन्न सुख दुःख जिन करिके देहादिकों को सयोग

होता है तिन देहादिकों के संसर्ग से आत्मा भी बद्ध होताहै वस्तु से वद्ध नहीं है जैसे चोर चोरी किया बांधा गया चोरके संगी माता पिता चोरी नहीं की चोर बांधे जाते हैं ॥ ५२ ॥

देहगुणकरणगोचरसंगः पुरुषस्य यावदिह भवति ।
तावन्मायापाशैः संसाररुद्ध इवाभाति ॥ ५३ ॥

जबतक जीवको देह इन्द्रिय विषय का साथ है तब तक संसार विषे माया की फंसरी करिके बंधा ऐसा मालूम होता है ॥ ५३ ॥

मातृपितृपुत्रबान्धवधनभोगविभागसंमूढः ।
जन्मजरामरणमयेचक्र इव भ्राम्यते जंतुः ॥ ५४ ॥

माता पिता पुत्र बंधु धन भोगमें संयुक्त जीव जन्म मरण जरा रूप चक्र मेंभमा ऐसा घूमता है ॥ ५४ ॥

लोकव्यवहारहतांयदिहाविद्यामुपासते मूढाः ।
तेजननमरणधर्माणोह्यन्धतमस्यत्यंखिद्यंते ॥ ५५ ॥

जो अज्ञानी जीव लोकव्यवहार रूप अज्ञान में फसे रहते हैं तिनका जन्म मरण नहीं छूटता वे अन्धनरकमें प्राप्त होके दुःखी होते हैं ॥ ५५ ॥

हिमफेनबुद्बुदादिवजलस्यधूमोऽग्निमेयथावन्हेः ।
तद्वत्स्वरूपभूतामायैषाकीर्तिताविष्णोः ॥ ५६ ॥

जैसे जलमें सीतलता व फेना व बुल्ला होतेहैं वैसे अग्नि में धुंवा होता है तैसेही विष्णु की माया कही जातीहै ॥ ५६ ॥

एवंद्वैतविकल्पांभ्रमस्वरूपांविमोहिनीमायां ।
उत्सृज्यसकलनिष्कलमद्वैतंभावयेद्ब्रह्म ॥ ५७ ॥

ऐसे द्वैत की कल्पना भ्रमरूप औ सब को मोहावती माया को छोड़ि के संपूर्ण कलाहीन अद्वैत ब्रह्म की भावना करै ॥ ५७ ॥

यद्वत्सलिलेसलिलंक्षीरेक्षीरंसमीरणेवायुः ।
तद्वद्ब्रह्मण्यमलेभावनयातन्मयत्वमुपयाति ॥ ५८ ॥

जैसे जलमें जल मिलि जाताहै दूध में दूध मिलि जाताहै वायु में वायु मिलिजातीहै तैसेही जीव भक्ति करिके ब्रह्मरूप होय जाता है ॥ ५८ ॥

इत्थंद्वैतसमूहे भावनया ब्रह्मभावमुपासते ।
को मोहः कश्शोकस्सर्वं ब्रह्मावलोकयतः ॥ ५९ ॥

इसी तरह से संसार विषे भक्ति करि के ब्रह्म की उपासना करते तिन को मोह व शोक नहीं होता वेसव ब्रह्म मय देखते हैं ॥ ५९ ॥

विगतोपाधिःस्फटिकःस्वप्रभयाभातिनिर्मलोयद्वत् ।
चिद्दीपःस्वप्रभयातथाविभातीहनिरुपाधिः ॥ ६० ॥

जैसे स्फटिक पत्थर का रंग छुडाइ डारो तो अपने तेज करिके निर्मल शोभा को प्राप्त होता है तैसेही चैतन्य दीप उपाधि रहित होने से अपने तेज करिके प्रकाशित होता है ॥ ६० ॥

गुणकरणगणशरीरप्राणैस्तन्मात्रजातसुखदुःखैः ।
अपरास्पृष्टाव्यापीचिद्रूपोहंसदाविमलः ॥ ६१ ॥

गुण सत्वादि इंद्रिय गण श्रोत्रादि शरीर प्राण इनसे उत्पन्न सुख दुःख से रहित व्यापक मल रहित चैतन्य रूप मैं सदा हौं ऐसी मन मे भावना राखै ॥ ६१ ॥

द्रष्टाश्रोताघातास्पर्शयितारसयिताशृणोताच ।
देहोद्देन्द्रियधीविवर्जितःस्यान्नकर्तासौ ॥ ६२ ॥

देखता है सुनता है सुगन्ध को लेता है स्पर्श करता है रस को जानता है ग्राहक है ऐसा जो जीव है सो देहइन्द्रियसे अलग है कुछ नहीं करता है। ६२॥

एकोनैकत्रावस्थितोऽस्मैश्वर्ययोगतोव्याप्तः ।
व्याप्याकाशवदखिलंनकश्चिदत्रास्तिसन्देहः ॥ ६३ ॥

एक है औ आकाश की नाई सबमे स्थित है अहमैश्वर्य करिकै सर्वत्र व्याप्त है इसमे कोई सदेह नही है ॥ ६३ ॥

आत्मैवेदंसर्वंनिष्कलसकलंयदेवभावयति ।
मोहगहनाद्विमुक्तस्सदैवपरमेश्वरोभवति ॥ ६४

निष्कल कला रहित औ कला सहित जो कुछ है सो सब आत्माही है जो कुछ देखि मुनि पढनाहै यहबात जब २ भावना करै तब मोहसे छूटिजाता है परमेश्वर हो जाता है ॥ ६४ ॥

सिद्धान्तागमतर्कादिषुभ्रमंतियेयद्रागांधाः ।
अनुमोदामस्तेषांसर्वात्मवादिधिया ॥ ६५ ॥

सिद्धांत शास्त्र तर्कादिकों के विषे येरागांध होंइ के भ्रमत हैं तिनकों सब विषे आत्मवादी जो बुद्धि है तेहि करिके हमप्रसन्न होते हैं ॥ ६५ ।

सर्वाकारोभगवानुपास्यतेयेनयेनभावेन ।
तंतंभावंभूत्वाचिन्तामणिवत्तमभ्येति ॥ ६६ ॥

सर्व स्वरूप भगवान है मनुष्य जिस २ रूप की भावना करते हैं वो उपासना करते है सोई सोई रूप धारण करिके भगवान प्राप्त होते हैं जैसे चिन्ता मणि पत्थर ॥ ६६ ॥

नारायणमात्मानंज्ञात्वासर्गस्थितिप्रलयहेतुम् ।
सर्वज्ञःसर्वभूतःसर्वःसर्वेश्वरोभवति ॥ ६७ ॥

जब जीव अपने को सृष्टि पालन संहार कर्ता जो नारायण तन्मय जानता है तब सर्वज्ञ हो जाता है सर्व स्वरूप सजम-मिला परमेश्वर को सबमें देखता है ॥ ६७ ॥

आत्मज्ञस्तरतिशुचंयस्माद्विद्वान्नबिभेतिकुतश्चित् ।
मृत्योरपिनरणभयंनभवत्यन्यत्कुतस्तस्य ॥ ६८ ॥

जिसको देखिके किसीको भय न उत्पन्न होय ऐसा आत्मज्ञ विद्वान् कभी सोचको नही प्राप्त होता और मरण से भय नही होतो और भय कैसे होय ॥ ६८ ॥

क्षयवृद्धिवद्धघातकबंधनमोक्षैर्विवर्जितंनित्यं ।
परमार्थतत्वमेकंस्मृतोऽन्यत्तदसत्सर्वम् ॥ ६९ ॥

जिसका क्षय औ वृद्धि १ औ वद्ध औ घातक २ औ बन्धमोक्ष ३ कोई नही है औ नित्य है ऐसा परमार्थ तत्व एक मुख्य तिससे अन्य पदार्थ सब झूटे हैं । ६९ ।

एवंप्रकृतिपुरुषंविज्ञायनिरस्तकल्पनाजालः ।
आत्मारामःप्रशमसमाश्रितःकेवलोभवति ॥ ७० ॥

यहि प्रकार ते माया व ईश्वर को जानने से कल्पना को जाल छूटि जाता है आत्माराम होयके शांति को प्राप्त निर्विकार होइ जाता है १० ॥

नष्टकंदलिवेणुगणानश्यंतियथास्वयुप्यमासाद्य ।
तद्वत्स्वभावभूता:स्व भावनांप्राप्यनश्यंति ॥ ११ ॥

रामशर केला बांस ए जब फूले तब नाश होजाते हैं तैसेही जीव जब अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं तब मुक्त हो जाते हैं स्वभाव नाश होइ जाते हैं अपने स्वरूप को प्राप्त होइके ॥ ११ ॥

भिन्नेज्ञानग्रंथौछिन्ने संशयगणेशुभाशुभेक्षीणे ।
दग्धेचजन्मबीजेपरमात्मानंहरिंयाति ॥ १२ ॥

जब जीवको अज्ञान की गांठि छूटिजाती है संदेह नाश होइ जाता है पाप पुण्य क्षीण होइ जाते हैं कर्म रूप बीज जरिजाता है तब वह जीव परमात्मा को प्राप्त होइ जाता है ॥ १२ ॥

मोक्षस्यनैवकिंचिद्धामास्तिनचापिगमनमन्यत्र ।
अज्ञानमयग्रंथेर्भेदोयस्तंविदुर्मोक्षं ॥ १३ ॥

मोक्षका कोई घर नहीं है और न कहीं और ठौर में जाना है जो अज्ञान की ग्रंथि का छूटना है सोई मोक्ष है यह बात महात्मा कहि गये हैं ॥ १३ ॥

बुध्वैवमसत्यमिदंविष्णोर्मायात्मकंजगद्रूपं ।
विगतद्वंद्वोपाधिर्भोगासंगोभवेच्छांत: ॥ १४ ॥

विष्णु की माया मय ऐसा येह जगत रूप झूठा जानि के द्वैत उपाधि छोड़ि देय भोगमें संग न करै तो शांत चित्त होय ॥ १४ ॥

बुध्वाविभक्तांप्रकृतिंपुरुष:संसारमध्यगोभवति ।
निसंगः:सर्वकर्मभिरंबुजपत्रंयथासलिलै: ॥ १५ ॥

संसार के बीच में टिका जो जीव हैं सो माया को अपना से अलग जाने तो सब कर्मों से छूटि जाइ जैसे कमलका पत्ता जलमें रहता है जल करिके लिप्त नहीं होता है ॥ १५ ॥

त्यक्त्वाकर्मविकल्पानात्मस्थंमनःकेवलंकृत्वा ।
दग्धेन्धनद्रववह्निःसर्वात्माभवेच्छान्तः॥ ७६ ॥

जब आत्मा विकल्पों को छोडिके मनको आत्मा विषे लगाता है तब सब ते शांत रूप होइ जाता हैं जैसे ईंधन जरि गया तब अग्नि शांत होइ जाता है ॥ ७६ ॥

यद्गतंयद्गतंप्राप्तंयेनकेनचिच्छान्तः ।
यत्रक्वचनशायीविमुच्यतेसर्वभूतात्मा ॥ ७७ ॥

जो पाया सो भोजन करलिया जो कोई ल्यवाइ गया तहां चला गया जहां पाया तहा सोयरहा ऐसा शांतरूप सबजीवन को आत्मा होजाता है संसारसे छूटिजाताहै । ७७ ॥

हयमेधशतसहस्राण्ययंकुरुतेब्रह्मघातलक्षाणि ।
परमार्थविन्नपुण्यैर्नचपापैःस्पृश्यतेविमलः ॥ ७८ ॥

ब्रह्मज्ञानीहजार अश्वमेधकरै पुण्यकरिकै युक्तनहींहोता हजारो ब्राह्मणमारै पापकरिकै युक्त नहीं होता सदानिर्मल रहताहै ॥ ७८ ॥

मदक्रोधहर्षमत्सरविषादभयपरुषवर्ज्यवाक्बुद्धिः ।
निस्तोत्रवषट्कारोजडवद्विचरेदगाधमतिः ॥ ७९ ॥

जो ज्ञानी बडा बुद्धिमान् न तो मतवार रहै न रिसकरै न खुसी होय, न किसीका द्रोह करै न विषादकरै न डिराय न कही बात कहै नपाठ करै न मंत्र जपै जडकी तरह घूमै । ७९ ॥

उत्पत्तिनाशवर्जितमेवंपरमार्थमुपलभ्यकृतकृत्यः ।
सफलजन्मासर्वगतस्तिष्ठतियथेष्टम् ॥ ८० ॥

जिसका उत्पत्ति विनाश नहीं ऐसे परमात्मा को प्राप्त होइके कृतार्थ हो अपना जन्म सुफल करता है स्वेच्छा पूर्वक वसता है ॥ ८० ॥

व्यापिनमभिन्नमित्यंसर्वात्मानंविगतनानात्वं ।
निरुपमपरमानंदंयोवेदसतन्मयोभवति ॥ ८१ ॥

सबमें व्यापी सबसे भिन्न नहीं सबका आत्मा नानात्व जिसकी नहीं ऐसे परमात्मा को जो जानता है सो परमात्महोजाता है ॥ ८१ ॥

तीर्थे श्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि परित्यजन्देहं ।
ज्ञानी समकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः ॥ ८२ ॥

जिसको कुछ सुधि नहीं है ऐसे ज्ञानीका देह तीर्थ में वा डोमके घरमें छूटि जाइ तो केवल ब्रह्म को प्राप्त होय कोई शोक न होय ज्ञान उत्पन्न होते मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥

पुण्याय तीर्थसेवा निरयाय श्वपचनिधनगतिः ।
पुण्यायपुण्यफलं यस्य स्पर्शो भवेत्तु किमेतेन ॥ ८३ ॥

तीर्थ सेवा से पुण्य होती है स्वपचके घर मरने से नरक होता है जिसको पुण्य वा पाप को स्पर्श नहीं है तो पुण्य पाप का फल स्वर्ग नरक कैसे होय ॥ ८३ ॥

वृक्षाग्राच्च्युतपादो यद्वदनिच्छन्नरः पतति ।
तद्वद्गुणपुरुषज्ञोऽप्यनिच्छन्नपि केवली भवति ॥ ८४ ॥

जैसे वृक्षके ऊपर चढ़ा मनुष्य डार२फिरते पांव सकिला भूमिमें गिरि पड़ता है औ गिरने की इच्छा नहीं है तैसेही प्रकृति पुरुष का बिभाग जानने वाला चाहे इच्छा करै चाहे इच्छा न करै केवल ब्रह्मरूप होइ जाइगा ॥ ८४ ॥

परमार्थमार्गसाधनमभ्यस्य प्राप्य योगमपि नाम ।
सुरलोकभोगभोगी मुदितमना मोदते सुचिरम् ॥

मोक्ष साधन मार्ग में अभ्यास करिके योग में प्राप्त होइके बहुत दिनतक इंद्र लोकमें भोग कर्ता है और आनंदित होता है । ८५ ॥

विषयेषु सार्वभौमः सर्वजनैः पूज्यते यथा राजा ।
भुवनेषु सर्वदेवैर्योगभ्रष्टस्तथा पूज्यः ॥ ८६ ॥

जैसे अखिल मंडलेश्वर राजा को सब देश वासी पूजते हैं तैसेही योगभ्र को चौदहों भुवन बिषे ये देवता गणहैं ते सब पूजा करते हैं ॥ ८६ ।

महता कालेन पुमान्मानुष्यं प्राप्य योगमभ्यस्य ।
प्राप्नोति दिव्यममृतं यत्तत्परमं पदं विष्णोः ॥ ८७ ॥

यह योग भ्रष्ट बहुत दिन स्वर्ग भोग करिके मनुष्य योनिमें पैदा होइके फिरि योगाभ्यास करिके जो अविनाशी बिष्णुपदहै तिस्को प्राप्त होइ जाताहै ॥ ८७ ॥

वेदान्तशास्त्रमखिलंविलोक्यशेषस्तुजगदाधारः।
आर्य्यापञ्चाशीत्याबबंधपरमार्थसारमिदं॥ ८८॥

जगतके धारण कर्त्ता शेष सम्पूर्ण वेदांत शास्त्र को देखिकै पचासी आर्य्या छंद करिकै यह परमार्थसारको प्रबन्ध किया॥ ८८॥

इतिश्रीपरमार्थसार भाषाटीकासहितसम्पूर्णम्॥
सम्वत् १९३२